International Journal of Applied Research 2023; 9(7): 182-184

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2023; 9(7): 182-184
www.allresearchjournal.com
Received: 22-03-2023
Accepted: 26-04-2023

मोहित सिंह रौतेला
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, डी0 एस0 बी0 परिसर, नैनीताल, उत्तराखण्ड, भारत

Corresponding Author:
मोहित सिंह रौतेला
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, डी0 एस0 बी0 परिसर, नैनीताल, उत्तराखण्ड, भारत

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद – पं0 दीनदयाल उपाध्याय का विचार दर्शन

मोहित सिंह रौतेला

सारांश
मुख्यतः किसी एक व्यक्ति के मूल में उसके जैविक अस्तित्व में उसको समेटे हुए उसका एक चेतन अस्तित्व भी अवश्य होता है। जो उसे सकारात्मकता के साथ ऊर्जा संसार में भी मदद करता है। ठीक उसी तरह किसी राष्ट्र मानव समुदाय का भी एक चेतन अस्तित्व होता है। इसी अस्तित्व को परिभाषित करते हुए पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने नया विचार प्रस्तुत किया। जिसे उन्होंने एकात्म–मानववाद का नया नाम दिया। और इसी में उन्होंने राष्ट्र की चिति को भी सन्दर्भित कर व्याख्यायित किया। जिस प्रकार यदि व्यक्ति के मूल स्वभाव के साथ छेड़छाड़ की जाय तो वह चिड़चिड़ा एंव मनोविकार से ग्रस्त हो जाएगा। ठीक उसी प्रकार किसी राष्ट्र की नीति, संस्कृति ,रीति, चिति एंव विभिन्न आंतरिक जीवन में पक्षों के साथ समझौता किया जाए तो वह राष्ट्र भी खामियों से ग्रस्त हो जाएगा और ऐसा राष्ट्र बीमारू राष्ट्र कहलाएगा। अपनी दूर दृष्टिता से पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने इस बात को बेहद बारीकी व संजीदगी से देखा व आंकलन किया तब जाकर भारत की चिति अर्थात् धर्म निष्ठ और धर्म–धिष्ठित राष्ट्रीय जीवन की पैरोकारी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के संदर्भ में की। वे भारत की राजनीतिक व्यवस्था का गठन और संचालन धार्मिक मूल्यों पर आधारित व पोषित करना चाहते थे। इन सब का समग्र मेल व सांमजस्य सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में खोजना चाहते थे।

कूटशब्द : चिति, राष्ट्र, सांस्कृतिक, राष्ट्रवाद, धर्म, सांस्कृतिक एकता, भारतीयता, भारतीय ज्ञान परंपरा, एकात्म दर्शन, राष्ट्रीय पहचान, राजनीतिक।

प्रस्तावना
उपाध्याय जी भारतीय ज्ञान परंपरा के सचांलक थे। उन्होंने भारत की रातनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिपेक्षो में भारतीय परम्परा के आधार पर विशुद्ध भारतीय परंपरा और ज्ञान धारा पर आधारित विचार रखे। वे भारतीयता से ओत–प्रोत थे। उनके मन, वचन, जीवन, व्यवहार व दर्शन में भारतीयता की स्पष्ट झलक देखने को मिलती थी। उन्होनें राजनीति को राष्ट्र–साधना माना। वे राजनीति के माध्यम से राष्ट्र सेवा में अपना योगदान देना चाहते थे। पं0 दीनदयाल उपाध्याय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के संवाहक थे जिसका पता उनकी पुस्तक से ''Pt. Deendayal Upadhyaya: Ideology and Perception" में स्पष्ट रूप से व्याख्यायित किया गया है। दीनदयाल जी निसंदेह राष्ट्रवादी राजनीति के दार्शनिक थे, लेकिन इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि वे मानवतावादी के रूप में सर्वोत्कृष्ट थे। वैसे तो दीनदयाल जी का चिंतन आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, वैचारिक एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित समग्र दृष्टि थी।[1]

पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने इसी दृष्टि से स्वतंत्र भारत की समस्याओ का समाधान करने का प्रयास किया। प्राचीन काल से ही मानव समुदाय अपना तादात्मय किसी न किसी राजनीतिक इकाई के साथ करता रहा है। साथ ही उसके चिंतन में सदैव मातृभूमि से लगाव व प्रेम स्वभाविक रूप से जाहिर भी होता है। राष्ट्रवाद में मातृभूमि के प्रति प्रेम और राज्य जैसी आधुनिक, राजनीतिक संकल्पना के प्रति निष्ठा के गठजोड़ का यह सामंजस्य एक मजबूत राष्ट्रवाद की नींव साबित होता है।[2]. प्रत्येक राष्ट्र का अपना एक ऐतिहासिक परिपेक्ष होता है। इसलिए राष्ट्र व राष्ट्रवाद की कोई स्पष्ट परिभाषा तो नहीं दी जा सकती। हाँ जरूर व्यवहारिक दृष्टि से कहा जा सकता है किसी भौगोलिक क्षेत्र के भीतर रहने वाले लोग जो अपने इतिहास, परम्परा, भाषा, नृजातीय धर्म और संस्कृति आदि के आधार पर स्वयं व दूसरों से एक साझा संस्कृति को बाँटते है और तब उसे पृथक इकाई के रूप में देखते हैं और उन्हे राष्ट्र और उनकी एकात्म भावना को राष्ट्रवाद कहा जा सकता है।[3]

राष्ट्रवाद के स्वरूपगत भिन्नताओं को देखते हुए इसे भिन्न–भिन्न कोटियों मे बाँटा जा सकता है। प्रथम राजनीतिक क्षेत्रीय राष्ट्रवाद, द्वितीय भू–सांस्कृतिक राष्ट्रवाद।[4] भारतीय राष्ट्रवाद पर भी विभिन्न विचारधाराओं ने इन दोनों दृष्टियों से इसे देखा है।

एक धारा के अनुसार भारत अंगेजी औपनिवेशिकता के प्रभाव में आकर आधुनिक यातायात और संचार के साधनो में हुए विकास और आधुनिक, राजनीतिक विचारों के प्रभाव में आकर हुए वैचारिक परिवर्तन के परिणाम स्वरूप एक राजनीतिक, क्षेत्रीय राष्ट्र (पॉलिटिकल टैरीटोरियल नेशन) के रूप में उभरा। जबकि दूसरी धारा भारत की प्राचीन राष्ट्रीय धारा है जो कि भारत की प्राचीन गौरवशाली सांस्कृतिक पहचान है। जिस धारा का स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, दीनदयाल उपाध्याय व बाल गंगाधर तिलक ने भी समर्थन किया हैं। दीनदयाल उपाध्याय जी भी भागे चलकर इस धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये महान विभूतियाँ भारत को भू–सांस्कृतिक इकाई के रूप में देखते हैं, इसे ही सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कहा जाता हैं। हम जानते हैं भारत में अनेक विविधतायें व्याप्त हैं। जिनके आधार पर कई बार भारत में राष्ट्रीय एकात्मकता पर आक्षेप लगाया जाता है कि भारत विभिन्न राष्ट्रीय पहचानों में विभक्त हैं। इस संदर्भ में पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का चिंतन एक बार पुनः प्रासंगिक हो जाता है। वे भारत को बहुल सांस्कृतिक राष्ट्र नहीं अपितु एकल, एकात्म संस्कृति राष्ट्र मानते थे। दीनदयाल उपाध्याय जी कहते हैं– ''भारतीय राष्ट्रवाद एक व्यक्ति, एक देश, एक संस्कृति की अवधारणा पर आधारित है।'[5]

कोई भी राष्ट्र भिन्न–भिन्न राष्ट्रीयताओं से मिलकर नहीं बन सकता। यह तार्किक भी नहीं जान पडता। राष्ट्र स्वयं में एक पूर्ण एकात्म इकाई होता हैं भला पूर्ण एकात्मकता के अभाव में राष्ट्र अस्तित्व मान कैसे रह सकता है? दीनदयाल उपाध्याय जी भारतीय राष्ट्रीयता को समझाते हुए संदर्भित करते हैं कि "किसी देश के नागरिक तभी एक राष्ट्र बनते हैं जब वे एक ही सांस्कृतिक सूत्र में बंधे होते हैं। जब तक भारत इस विश्वास का पालन करता रहा, तब तक कई राज्यों और क्षेत्रों के बावजूद यह एक था।'' [6]

दीनदयाल जी ने इस बात से इनकार कर दिया कि भारतीय संस्कृति को प्रचलित विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं की दृष्टि से देखा जाय। वे लीग के द्विसंस्कृतिवाद, कांग्रेस के प्रछन्न द्विसंस्कृतिवाद व साम्यवादियों के बहुल संस्कृतिवाद के नजरिए से भारत व्याख्यायित करने के प्रयास का सदा विरोध करते थे। वे इसे दोष पूर्ण दृष्टि मानते थे। स्पष्ट शब्दों में उनका कहना था कि– "कांग्रेस, समाजवादी, कम्युनिस्ट सभी विदेशी विचारकों से प्रेरित हैं और भारतीय समाज में विभिन्न संस्कृतियों के मिश्रण में विश्वास करते हैं। वे सभी क्षेत्रीय राष्ट्रवाद की वकालत करते हैं व भूगोल और राजनीति के आधार पर राष्ट्रीयता में विश्वास करते हैं''।[7]

दीनदयाल उपाध्याय जी अल्पसंख्यकवाद व भूसंख्यकवाद की राजनीति के सदा विरोधी रहे। उनके विचार में तो एकात्मकता का भाव था और वे मानते थे कि भारतीय संस्कृति राजनीतिक एकता के बजाय मनोवैज्ञानिक एकता पर बल देती है एवं आधारित भी है।[8] भारत में छोटी–छोटी इकाइयों को पूर्ण विकसित करने के लिए सदैव, विविधता का संरक्षण एवं संवर्धन किया जाता रहा है। किसी भी राष्ट्र में किसी समुदाय की अपनी एक विशिष्ट पहचान होती है और इसका संवर्धन और विकास प्रत्येक इकाई द्वारा राष्ट्र से अपेक्षित भी होता है। विविधता एक प्राकृतिक सत्य है। यह प्रकृति की दैवीय अभिव्यक्ति है।[9] ईश्वर ने स्वयं को भी विविध रूपों में अभिव्यक्त किया है। यह मानकर भारतीय संस्कृति एकरूपता नहीं अपितु एकता की पक्षधरता की बात करती है। उपाध्याय जी कहते हैं अनेकता में एकता और विविध् रूपों में एकता की अभिव्यक्ति भारतीय संस्कृति का केन्द्रीय विषय रहा है। यदि इस सत्य को स्वीकार कर लिया जाए तो संघर्ष का कोई कारण मालूम नहीं पड़ता।[10]

दीनदयाल उपाध्याय के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के विचारों को समझने के लिए हमें चिति की अवधारणा को समझना भी अपेक्षित होगा। दीनदयाल जी के अनुसार जिस तरह प्रत्येक आम व्यक्ति में एक आत्मा होती है अपनी पहचान अपनी निजता के साथ विशिष्टता होती है ठीक उसी प्रकार राष्ट्र का एक अपना व्यक्तित्व होता है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का एक जीवन ध्येय होता है, ठीक उसी प्रकार किसी भी राष्ट्र का अपना एक जीवन ध्येय और जीवन दर्शन होता है। दीनदयाल जी ने राष्ट्र को मानव की भाँति सचेतन जीवमान इकाई माना। राष्ट्र की इसी चेतना को दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार शास्त्रों ने चिति कहा है।[11] यह चिति ही राष्ट्रीय पहचान की प्रतीक है। 'मैकडयूगल' ने भी कहा है ''यह (चिति) समूह की जन्मजात प्रकृति है। व्यक्तियों के प्रत्येक समूह में एक जन्मजात प्रकृति होती है। प्रत्येक समुदाय का जन्मजात स्वभाव होता है।''[12] भारतीय परम्परा राष्ट्र को इसी दृष्टि से देखती है। जिस प्रकार मनुष्य को प्रदत्त आचार और विचार प्रकृति की देन है, ठीक उसी प्रकार राष्ट्र एक जीवित इकाई कृत्रिम सृजन नहीं अपितु प्रकृति प्रदत्त होती है।[13] जिसका एक प्रकृति निर्धारित ध्येय है। बिना किसी ध्येय वाला व्यक्ति समूह (राष्ट्र) केवल भीड़ मात्र होगा। किसी भी राष्ट्र को राष्ट्र तभी कहा जाएगा जब उसके चित्त में आदर्श और मातृभूमि दोनों हों।[14] महर्षि अरविन्द ने भी कहा है– "प्रत्येक राष्ट्र मानवता में विकसित हो रही भावना की शक्ति की शक्ति है और उन सिद्धांतों के अनुसार रहता है जिन्हें वह अपनाता है।"[15]

दीनदयाल उपाध्याय जी का स्पष्ट मत था कि अगर भारत को समझना है, उसकी आत्मा को पहचानना है तो अर्धनीति के सभी ऐनक उतारकर सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भारत के भू–पटल को देखना होगा। भारत स्वयं में राजनीति नहीं अपितु संस्कृति को समेटे हुए है।[16] दीनदयाल उपाध्याय जी भूमि, जन और संस्कृति के संघात को ही राष्ट्र मानते थे। इसलिए वे भूमि और जन में माता और पुत्र जैसा सम्बन्ध होना राष्ट्र के लिए आवश्यक मानते थे।[17]

22 अप्रैल 1965 के अपने एक संबोधन में उन्होंने राष्ट्रीय पहचान पर बारीकी से समझाने का प्रयास किया और बताया कि ''यह आवश्यक है कि हम अपनी राष्ट्रीय पहचान के बारे में सोचें और बिना राष्ट्रीय पहचान के स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं रह जाता। कोई भी स्वाधीनता बिना राष्ट्रीयता के सुख का साधन नहीं बन सकती जब तक की हम राष्ट्रीय पहचान से अनभिज्ञ हैं''।[18] वास्तव में राष्ट्र इसलिए स्वतंत्र रहना चाहते हैं ताकि वे अपनी प्रकृति, प्रवृत्ति (चिति) के अनुसार विश्व और मानवता के पथ पर अपनी यात्रा को सुचारू रख सकें। यदि उपनी मूल प्रवृत्ति के विरूद्ध ही राष्ट्रों को जीना हो तो उनकी स्वाधीनता और पराधीनता में क्या भेद है। उनके अनुसार ''उनकी प्राकृतिक प्रवृत्तियों का दमन मानसिक विकार उत्पन्न करते हैं।''[19] अतः प्रकृति के विरूद्ध जीने वाले राष्ट्रों का आंतरिक जीवन द्वेष व कलह से पूर्णतः ग्रसित हो जाता है। उपाध्याय जी ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के रूप में सार कथन प्रस्तुत किया। जिसमें उन्होंने राष्ट्र को एकात्म मानकर धार्मिक परम्पराओं के साथ सांस्कृतिक गठजोड़ को मिलाकर देखने का प्रयास किया। भारत की एकता व अखंडता को पुष्ट करने के लिए समन्व्यात्मक कार्य किया। जैसे कुंभ स्नान, तीर्थ यात्रायें, नदी स्नान, धार्मिक मेले।''

दीनदयाल उपाध्याय जी लिखते हैं '' किसी भी मत अथता सम्प्रदाय को मानने वाले क्यों ना हों उसके सम्मुख हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक आसिन्धु, सिन्धु पर्यन्त भारत का मित्र रहता है। प्रत्येक समुदाय के आचार्यों ने यही प्रयत्न किया है कि उनके सम्प्रदाय के लोग सम्पूर्ण भारत को पवित्र मानें''। इसी ध्येय से भारत में विभिन्न सम्प्रदायों ने तीर्थयात्रा की पद्धति को शुरू भी किया।[20]

निष्कर्षत

कहा जा सकता है कि एकात्म–मानववाद के प्रणेता दीनदयाल उपाध्याय जी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सच्चे समर्थक एवं पुरोधा

थे। साथ ही वे भारत की चिति उसके विराट को सूक्ष्म दृष्टि से सदैव प्रस्तुत करने में सफल भी रहे। सन् 1964 राजस्थान उदयपुर में लगे R.S.S के एक बौद्धिक शिविर में उन्होंने कहा था कि – "मैं राजनीति में नहीं हूं लेकिन राजनीति में राष्ट्रवाद का सांस्कृतिक दूत हूं। राजनीति न हो और सिर्फ संस्कृति हो तो बेहतर होगा।"[21] भारत रत्न श्री वाजपेयी जी ने भारत माता के इस सच्चे राष्ट्र साधक को श्रद्धांजलि देते हुए ठीक ही कहा था कि – उनके जीवन पर हमला हमारे राष्ट्रवाद पर हमला है। उनके शरीर पर घाव हमारे लोकतंत्र पर हमला है। हम राष्ट्र विरोधियों और लोकतंत्र के दुश्मनों की चुनौती स्वीकार करते हैं।[22]

सन्दर्भ

1. माथुर, एल. एम. पं. दीनदयाल उपाध्यायः आइडियोलॉजी एंड पर सेप्शन पार्ट (iii), सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ0सं0 128।
2. राजपुरोहित, कन्हैया लाल, आध्यात्मिक राष्ट्रवाद, सांइटिफिम पब्लिशर्स (इण्डिया) जोधपुर, 2021,पृ0सं0 01।
3. मिश्र, विश्वनाथ, भारतीय राष्ट्रवाद, डी0के0 प्रिंट वर्ड (प्रा0)लि0 नई दिल्ली पृ0सं0 02।
4. त्रिपाठी, प्रयाग नारायण, डॉ0 राम मनोहर लोहिया का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, एन0वी0टी0: नई दिल्ली, पृ0सं0 18।
5. माथुर, एल0एम0, पं0 दीनदयाल उपाध्यायः आइडियोलॉजी एंड परसेप्श पार्ट (iii), सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ0सं0 130।
6. शर्मा, महेश चन्द्र, विल्डर्स ऑफ मार्डन इंडिया, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, 2015, पृ0सं0 30।
7. उपरोक्त–पृ0सं0 31।
8. घोष अरविन्द, द आइडियल ऑफ ह्यूमन यूनिटी, श्री अरविन्दो आश्रम पब्लिकेशन, पाण्डिचेरी, 1919, पृ0सं0 38।
9. शर्मा, राधे श्याम, भारत– वैभव, स्वास्ति प्रकाशन संस्थान, पुरी ओडिशा, 2010, पृ0सं0 53।
10. 23 अप्रैल 1965 को मुम्बई में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत व्याख्यान।
11. त्रिपाठी, प्रयाग नारायण, डॉ0 राम मनोहर लोहिया का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, एन0वी0टी0, नई दिल्ली, 2019, पृ0सं0 17।
12. 24 अप्रैल 1965 को मुम्बई में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत व्याख्यान।
13. 25 अप्रैल 1965 को मुम्बई में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत व्याख्यान।
14. 24 अप्रैल 1965 को मुम्बई में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत व्याख्यान।
15. घोष अरविन्द, द रेनेसा इन इंडिया, अरविन्द आश्रम प्रकाशन : पाण्डिचेरी, 1919, पृ0सं0 57।
16. त्रिपाठी, प्रयाग नारायण, डॉ0 राम मनोहर लोहिया का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, एन0वी0टी नई दिल्ली, 2019, पृ0सं0 29।
17. उपाध्याय, दीन दयाल उपाध्याय राष्ट्र जीवन की दिशा, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, 2014, पृ0सं0 94।
18. 22 अप्रैल 1965 को मुम्बई में पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत व्याख्यान।
19. उपरोक्त।
20. उपाध्याय दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र–चिंतन, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, 2014, पृ0सं0 56।
21. शर्मा, महेश चंद्र, विल्डर्स ऑफ मार्डन इंडिया, सूचना प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 2015, पृ0सं0 32।
22. वेब पेज– अराइज भारत डॉट कॉम पर उपलब्ध लेख– पं0 दीनदयाल उपाध्यायः द इम्बोडीमेन्ट ऑफ भारतीय नेशनललिज्म से उद्घृत।